R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-20, अङ्क-2 फरवरी 2020 1

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

भगवान श्री आदिनाथ स्वामी

2

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन सत्र 20-21 प्रवेश प्रारंभ

(फार्म जमा करने की अन्तिम तिथि - 05 मार्च 2020;
01 अप्रेल से 05 अप्रेल 2020 प्रवेश साक्षात्कार शिविर)

सद्धर्म प्रेमी बन्धुवर सादर जयजिनेन्द्र,

प्रत्येक वर्ष की भाँति इस वर्ष भी भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन मङ्गलायतन में प्रवेश प्रक्रिया प्रारंभ हो चुकी है। वर्तमान युग में अपने कोमलमति बालक और युवाओं में धर्म, संस्कार एवं नैतिक शिक्षा के साथ उच्च शिक्षा देना चाहते हो तो अवश्य ही 05 मार्च 2020 तक अपने प्रवेश फार्म मङ्गलायतन ऑफिस में जमा करायें।

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन लगातार उन्नति के शिखर को छू रहा है। यहाँ से निकले मङ्गलार्थी उच्च स्तर की प्रशासनिक एवं राष्ट्रीय सेवाएँ देते हुए समाज को तत्त्वज्ञान की शिक्षा दे रहे हैं। स्व-पर कल्याण करते हुए वीतरागी जिनमार्ग को घर-घर पहुँचा रहे हैं।

यदि आप भी चाहते हैं कि आज की पीढ़ी पाप के दलदल में न फँसे, सन्तोषपूर्वक आत्मकल्याण करते हुए अपना जीवन सफल करे तो अवश्य ही भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में अपने बालकों का प्रवेश करायें।

प्रवेश के योग्य अभ्यार्थी की पात्रता

(1) सातवीं कक्षा में कम से कम 60 प्रतिशत अंक से पास हो। (2) फार्म भरते समय छठी कक्षा में भी कम से कम 60 प्रतिशत अंक हों। (3) सातवीं कक्षा में अंग्रेजी माध्यम से ही पढ़ता हो। (4) शरीर में कोई असाध्य रोग न हो। (5) जैन धर्मानुसार अभक्ष्य भक्षण नहीं करता हो। (6) जैन धर्म पढ़ने की रुचि रखता हो।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन की विशेषताएँ

(1) पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित वीतरागी तत्त्वज्ञान का गहरा अध्ययन। (2) धार्मिक, नैतिक, सांस्कारिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक, आध्यात्मिक, सैद्धांतिक आदि विद्याध्ययन करने का अवसर। (3) भारत के उच्चतम स्कूल डी.पी.एस. में पढ़ने का अवसर। (4) विश्व के प्रसिद्ध विद्वानों से अध्ययन करने का अवसर। (5) चहुँमुखी प्रतिभा एवं विकास के साधन (6) डी.पी.एस. के माध्यम से विश्वस्तरीय खेल, प्रतिस्पर्धा एवं व्यक्तित्व विकास का अवसर। (7) खेल एवं संगीत शिक्षा की विशेष व्यवस्था। (8) मङ्गलायतन द्वारा देश-विदेश में तत्त्वज्ञान आराधना / प्रभावना करने का अवसर। (9) आगामी उच्चस्तरीय शिक्षा की पूर्व में ही विशेष कोचिंग की व्यवस्था। (10) आत्मसम्मान एवं जिनधर्म की शिक्षापूर्वक उच्च आजीविका का अवसर।

शीघ्र ही आप अपने बालकों का फार्म भरकर, तीर्थधाम मङ्गलायतन के पते पर कोरियर द्वारा 700 रुपये के ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

कोरियर भेजने का पता — भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, तीर्थधाम मङ्गलायतन
द्वारा श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ - 202001 (उ.प्र.)
मोबा : 9997996346, 9756633800

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-20, अङ्क-2 (वी.नि.सं. 2546; वि.सं. 2076) फरवरी 2020

दशलक्षण के दशधर्मों का...

दशलक्षण के दश धर्मों का, उत्सव आया प्यारा।
धर्म ध्यान और पूजन पाठ से, ज्यों दिश हो उजियारा॥
बोलो पर्यूषण की जय, बोलो दशधर्मों की जय- 2॥ टेक॥

उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच और संयम।
जो नर इन धर्मों को पाले, धन्य- धन्य हो जीवन।
इन दशधर्मों में है समाया, समयसार यह सारा॥
धर्मध्यान..... ॥1॥

तप और त्याग तो आभूषण है, इस मानव जीवन के।
आकिंचन और ब्रह्मचर्य है पूज्य है योगीजन के।
इन दश धर्मों के पालन से, सुधरे जीवन सारा॥
धर्मध्यान..... ॥2॥

मुनिदशा में उत्तम पालन, इन धर्मों का होता।
इन दशधर्मों से होती है परिणति निर्मल न्यारी।
हर अन्तर्मुहूर्त में मुनिवर, ध्याते शुद्धात्म न्यारा॥
धर्मध्यान..... ॥3॥

साभार : मंगल भक्ति सुमन

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
मुख्य सलाहकार
श्री बिजेन्द्रकुमार जैन, अलीगढ़
सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन
सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन
सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून
सम्पादकीय सलाहकार
स्व. पण्डित रतनचन्द भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन
मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

अङ्क के प्रकाशन में सहयोग
श्रीमती मंगलाबेन
नानालाल पारेख
ए-7, विवेकानन्द पार्क-3, डॉ. अम्बेडकर रोड, नेहरू मेमोरियल हॉल के सामने,
पूना - 411001 (महा.)

क्या - कहाँ

आत्मा को समझने..... 5
अजीव का वर्णन..... 7
शुद्धोपयोगरूप..... 14
आचार्यदेव परिचय शृंखला
श्री अमृतचन्द्रदेव..... 23
समाचार-दर्शन..... 30

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

आत्मा को समझने की जिज्ञासा

[भेदज्ञान द्वारा जीव महान होता है। हे जीव! तू ऐसा दृढ़ निश्चय कर तो अवश्य ही निर्विकल्प अनुभव होगा।]

पिछले दिनों गुरुदेव चार दिन के लिये भावनगर पधारे; टाऊनहॉल में समयसार गाथा 72 पर प्रवचन करते हुए कहा कि—ज्ञानस्वभावी आत्मा का चेतनस्वभाव है और रागादि भावों में चेतनपना नहीं है अर्थात् स्व-पर को जानने का स्वभाव नहीं है, वे दूसरे के द्वारा जाने जाते हैं।

'मैं राग हूँ' ऐसी राग की खबर नहीं, बल्कि उससे पृथक् ज्ञान ही उसे जानता है कि यह राग है, और मैं ज्ञान हूँ।

इस प्रकार ज्ञान और राग की भिन्नता है, एकता नहीं। जो जीव ऐसी भिन्नता का ज्ञान करता है, वह जीव ज्ञान में राग के अंश को नहीं मिलाता, इसलिए उसका ज्ञान रागादि आस्रवों से निवृत्त हुआ है, पृथक् हुआ है—जब ऐसा ज्ञान हो, तभी आत्मा मोक्षमार्ग में आता है।

शास्त्राभ्यास द्वारा कहीं आास्रव नहीं रुकते। ज्ञान अन्तर्मुख होकर राग से भिन्न अपना अनुभव करे, तभी आस्रव छूटते हैं। आत्मज्ञान हो और राग में एकत्वबुद्धि रहे, ऐसा नहीं होता।

जिज्ञासु जीव को ऐसा लगता है कि यह रागादिभाव हमें दु:खदायक हैं और हमें उनसे छूटना है। इसलिए उनसे आत्मा कैसे पृथक् हो, ऐसा उसे प्रश्न उठा है। प्रश्न में उसने इतना तो स्वीकार किया है कि रागादिभावों में मेरा सुख नहीं और वह रागादिभाव मेरा स्वरूप नहीं; इसलिए उनसे छूटा जा सकता है—छूटने के लिये ही यह प्रश्न है।

ऐसा प्रश्न अन्तर में किसी को ही उठता है। आत्मा की यह बात श्रवण करनेवाले भी कम ही होते हैं और उसे समझकर अनुभव करनेवाले तो कोई

विशेष ही होते हैं। यह तो जिसे आत्मा का प्रेम हो, उसकी बात है; संसार में पैसा आदि जिसे प्रिय लगता है, राग और पुण्य प्रिय है, उसे यह आत्मा की बात कहाँ से अच्छी लगेगी? आत्मा तो इन सबसे रहित एक ज्ञानानन्द-स्वरूप है। ऐसा आत्मस्वरूप समझने की सच्ची जिज्ञासा भी बहुत कम लोगों में जागृत होती है। साक्षात् अनुभव करनेवाला तो कोई विशेष ही होता है।

स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अपने आत्मा का परमेश्वररूप अनुभव में लिया, तब रागादिभावों से उसकी अत्यन्त भिन्नता हुई। आत्मानुभूति विकल्प से परे है। कर्ता-कर्म का भेद उसमें नहीं, ज्ञान में इन्द्रियों का अवलम्बन नहीं; आत्मा स्वयंप्रत्यक्ष विज्ञानघन है; वह विकल्पों से रहित अनुभूति मात्र है—ऐसे अपने स्वरूप का निर्णय करके जहाँ अन्तर्मुख हुआ, वहाँ चैतन्य आत्मा अपने शान्तरस में निमग्न होता है, विकल्पों के भँवर शान्त हो जाते हैं और वह आस्रव से छूट जाता है। इस प्रकार ज्ञान का अनुभव ही दु:ख से छूटने का मार्ग है।

जीव को अरिहन्त और सिद्धभगवान जैसा महान होना है। तो वह अपने को उनके ही समान महान (पूर्णस्वभाव से भरा हुआ) मानने पर होगा, या अपने को राग जैसा तुच्छ मानने से महान होगा? सिद्धभगवान के समान ही मेरा शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है। ऐसा अन्तर्मुख निर्णय करके उस स्वरूप के अनुभव द्वारा आत्मा स्वयं केवलज्ञान प्रगट करके सिद्ध भगवान के समान महान होता है। परन्तु मैं तो राग का कर्ता हूँ, मैं शरीर का कर्ता हूँ—ऐसा अनुभव करनेवाला जीव कभी भी महान नहीं हो सकता। भेदज्ञान द्वारा ही महान हुआ जाता है।

भाई! दूसरों के अवलम्बन से तू सुखी होना मानता है, वह तो तेरी दीनता है। तेरी महानता तो इसमें है कि—मैं स्वयं सर्वज्ञता और पूर्ण आनन्द

शेष पृष्ठ 22 पर.....

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामीजी के

अजीव का वर्णन

गतांक से आगे

तनता मनता वचनता, जड़ता जड़सम्मेल।
लघुता गुरुता गमनता, ये अजीवके खेल॥27॥

अर्थः– तन, मन, वचन, अचेतनता, एक–दूसरे से मिलना, हलका और भारीपन तथा गति करना– यह सब पुद्गल नामक अजीव द्रव्य की परिणति है।

काव्य – 27 पर प्रवचन

यह अजीव की व्याख्या है।

'तनता'– शरीरपना, यह जड़ का लक्षण है। भगवान चैतन्य उससे अत्यन्त भिन्न–भिन्न है। **'मनता'** अर्थात् मनपना भी जड़ का है। जैसे देखने का कार्य आत्मा करता है, परन्तु उसमें आँख निमित्त होती है; वैसे ही विचार तो भगवान आत्मा करता है, परन्तु उसमें निमित्तरूप जो मन है; वह अनन्त परमाणुओं से बना है। खिले हुए कमल के आकार जैसा है, परन्तु सूक्ष्म इतना है कि डॉक्टर छाती चीरे तो भी कुछ हाथ में नहीं आता, इतना छोटा अंगुल के असंख्यातवाँ भाग माना है। उसको अवधिज्ञानी और गणधर देव जान सकते हैं, परन्तु डॉक्टर पोस्ट–मार्टम करे, तब भी हाथ में आवे अथवा दिखे वैसा नहीं है।

'वचनता'–भाषा भी जड़ है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है और वाणी तो जड़ है, अतः आत्मा भाषा नहीं बोल सकता। वाणी का निकलना अजीव का कार्य है। शरीर और मन भी अजीव का खेल है, आत्मा का खेल नहीं; परन्तु आतमराम को अपने खेल की खबर नहीं और जड़ के खेल को यह शरीर मेरा, वचन मेरा, मन मेरा –मेरा करके बैठ गया है।

'जड़ सम्मेल'–परमाणुओं का मिलना और बिछुड़ना ये सब जड़ के कार्य हैं। आत्मा जड़ का कार्य नहीं कर सकता। भोजन का ग्रास मुँह में आना, पेट में जाना, मल बनना ये सब जड़ के खेल हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा तो अमृत आनन्दस्वरूप है, उसे स्वयं ने कभी देखा या जाना नहीं,

उसकी श्रद्धा की दरकार भी नहीं की, उसको भूलकर-वररहित बारात जोड़ दी है। दाल, भात करना, लड्डू करना, अनेक जाति का साधन इकट्ठा करना ये सब जड़ के खेल हैं, उन्हें मैं करता हूँ ऐसा अज्ञानी मानता है।

'लघुता'- अर्थात् हल्कापना, वह भी जड़ के होता है; आत्मा के नहीं होता। रूई हल्की और कोमल होती है। **गुरुता** अर्थात् भारीपना, वह भी जड़ का गुण है। **गमनता** अर्थात् गति करना, वह भी जड़ का खेल है। आत्मा शरीर को गति करावे, तब गति करे- ऐसा नहीं है। हाथ, पैर वाणी, शरीर आदि के हलन-चलन, गमन आदि जड़ का खेल है, आत्मा उसको नहीं करता।

जड़ का खेल अर्थात् जड़ की परिणति का कर्त्ता जड़ है। आत्मा तो उसका साक्षी है, परन्तु अज्ञानी को यह भान नहीं होने से वह अभिमान में चढ़ जाता है। यह संस्था मैं चलाता हूँ, यह महल मैंने बनाया है। अरे ! यह विशाल मकान उसके मालिक ने तो नहीं बनाया, परन्तु कारीगर ने भी नहीं बनाया। यह तो जड़ का किया हुआ जड़ सम्मेल है। जड़ का खेल जड़ से होता है, आत्मा से नहीं होता।

समयसार में अन्तिम कलश आता है न कि जगत को नाचना हो तो नाचो। मैं तो जो हूँ, वह हूँ। यह टीका रचने का कार्य मेरा नहीं। अजीव नाचता है। मैं तो चैतन्यबिम्ब प्रकाश की मूर्ति हूँ। जड़ के परमाणु आयें, जायें, मिलें, भिन्न हों; मैं उनका साक्षी हूँ, करने वाला नहीं। इस प्रकार ज्ञानी साक्षी रहता है और अज्ञानी कर्ता होकर अभिमान करता है, परन्तु जड़ का खेल तो जड़ का ही है, वह आत्मा का नहीं होता।

यह श्री नाटक समयसार शास्त्र की उत्थानिका चलती है। उसमें जीव और अजीव का वर्णन आ गया, अब पुण्य तत्त्व का वर्णन अगले काव्य में चलता है।

पुण्य का वर्णन

जो विशुद्धभावनि बंधै, अरु ऊरधमुख होइ।
जो सुखदायक जगतमैं, पुन्य पदारथ सोइ ॥28॥

अर्थः– जो शुभभावों से बँधता है, स्वर्गादि के सम्मुख होता है और लौकिक सुख का देनेवाला है, वह पुण्य पदार्थ है।

काव्य – 28 पर प्रवचन

विशुद्धभाव का अर्थ शुद्धभाव भी होता है और शुभभाव के अर्थ में भी इसका प्रयोग होता है। यहाँ विशुद्धभाव कहकर शुभभाव का अर्थ लेना है। जिसमें राग की मन्दता है, वह शुभभाव है, जिससे पुण्य बँधता है। दया, दान, भक्ति, पूजा आदि शुभभाव है, पुण्यबन्ध के कारण हैं, परन्तु उनसे धर्म नहीं होता।

पुण्य उर्ध्वगति का कारण है, अतः उसको 'उरधमुख' कहा है। मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि पाप अधोगति का कारण है और पुण्य उर्ध्वगति का कारण है और पुण्य तो मोक्षमार्ग का अनुसारी है– ऐसा कहा है, वह किस प्रकार ?और कब ?कि उस शुभभाव के विकल्प से भिन्न पड़कर स्वरूप की दृष्टि करे, तब शुद्धता प्रकट होती है, तब उस शुभभाव को उर्ध्वगति का कारण कहा जाता है।

तथा उसमें लिखा है कि शुभभाव जरूर उर्ध्वमुख करे, कारण कि जीव एकेन्द्रिय में से बाहर आता है, वह पुण्यभाव से ही बाहर आता है। दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, कौआ, कुत्ता आदि जीव मनुष्य आदि ऊँची गति में आते हैं, वह भी राग की मन्दता से ही आते हैं; अतः पुण्य को उर्ध्वमुख कहा है। इससे वह ऊँची गति का कारण है, परन्तु धर्म नहीं। शुभभाव, वह मोक्षमार्ग नहीं, बंध का ही कारण है; परन्तु यहाँ शुभभाव में शुद्धता का अंश सिद्ध करना है, अतः उसे उर्ध्वता का कारण कहा है, परन्तु वह धर्म नहीं है।

भगवान आत्मा तो अबंधस्वरूप है। चैतन्यमूर्ति ज्ञानघन राग और कर्म के लेपरहित वस्तु है। स्वयं मुक्तस्वरूप ही है। मुक्तस्वरूप न हो तो मुक्ति की पर्याय प्रकट कहाँ से हो ?छोटी पीपल में चौसठ पहरी तिखास भरी ही है तो वह घिसने से व्यक्त होती है। तिखास कोई पत्थर में से नहीं आती। वैसे ही शक्ति से तो आत्मा मुक्तस्वरूप ही है, उस पूर्णमुक्तस्वरूप के आश्रय से पर्याय में

मुक्ति प्रकट हो, उसे सिद्धदशा, मुक्तदशा अथवा निर्वाण कहते हैं। यह मुक्तदशा द्रव्य में से ही आती है, कहीं बाहर से नहीं आती। पुण्य से (जीव) स्वर्गादिक के सन्मुख होता है, परन्तु उससे कर्म का अभाव नहीं होता।

'जो सुखदायक जगत में'– संसार में पुण्य और उसके फल को सुखदायक मानने में आता है। अनुकूल संयोग मिलें, पाँच-दस करोड़ रुपये मिलें, मोटर-गाड़ियाँ मिलें, नौकर-चाकर मिलें– इससे जगत में उसे सुखदायक गिना है, परन्तु वस्तुतः वह बंध का ही कारण है, मुक्ति का कारण नहीं; अतः वह आत्मा को सुखदायक नहीं है।

मुमुक्षु– यहाँ पुण्य को सुखदायक कहा है न ?

पूज्य गुरूदेवश्री– भाषा देखो, जो सुखदायक जगत में.....जगत के जीव उसको सुखदायक मानते हैं। इज्जत, कीर्ति, मकान, स्वर्गादिक मिलें, उसमें संसारी जीवों को सुख लगता है। स्वर्ग को अमर कहा जाता है न! क्योकि वहाँ असंख्य अरब वर्षों की आयु है, अतः साधारण प्राणी को तो स्वर्ग ही वैकुंठ अक्षयधाम लगता है। यहाँ मनुष्यों में भी राजा, सेठिया आदि का वैभव ऐसा होता है कि गरीब मनुष्य तो आश्चर्य चकित हो देखता ही रहता है! परन्तु इसमें सुख नहीं है। भाई! जिसके फल में ऐसा सुख मिले, वह शुभभाव तो तूने अनन्त बार किये हैं। अनन्त बार नौंवे ग्रैवेयक तक हो आया, परन्तु उसमें सच्चा सुख कहाँ है? अनन्त काल में शुभ क्रिया तो बहुत की, नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंगी साधु हुआ, एक लंगोटी का भी परिगह नहीं; परन्तु राग से रहित आत्मा का शरण नहीं लिया, राग की क्रिया का शरण लिया।

छहढाला में कहा है कि–

मुनिव्रत धार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना, सुख लेश न पायो।।

सच्चिदानन्द प्रभु मेरा आत्मा पुण्य-पाप के विकल्पों से रहित शुद्ध आनन्दकन्द है– ऐसा भासित नहीं हुआ, इससे इतनी कड़क शुभ क्रिया करने पर भी लेश सुख प्राप्त नहीं हुआ।

'जो सुखदायक जगत में पुण्य पदारथ सोई'– शब्द कैसे लिए हैं! होशियार कवि हैं न! उनके शब्दों में कुछ अन्तर नहीं पड़ता। दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि शुभभाव हैं। वे धर्म भी नहीं और आत्मपदार्थ भी नहीं।

'जीव और अजीव'– इन दो वस्तुओं का पहले वर्णन किया। अब उनकी सात पर्यायों का वर्णन करते हैं। उनमें पुण्य–पाप और आस्रव–बंध यह चार विकारी पर्यायें हैं। वे जीव और पुद्गल के सम्बन्ध से होती हैं और संवर, निर्जरा और मोक्ष निर्विकारी पर्यायें हैं, वे जीव और पुद्गल के सम्बन्ध के अभाव से और जीव की पुरुषार्थ की जागृति व स्वसन्मुखता से प्रकट होती हैं।

सर्व प्रथम जीवतत्त्व का वर्णन किया, वह तो मुख्य वस्तु है। ज्ञायक, भगवान आत्मा सुखरूप है। चैतन्य स्वभावी, वेदन करनेवाला है, सो जीव है और शरीर, वाणी, मन, पैसा, मकान, कर्म आदि सब अजीव जड़तत्त्व है। इन दो के सम्बन्ध से जो दशा उत्पन्न होती है, उसमें से राग की मंदतारूप विशुद्धभाव, वह पुण्य पदार्थ है। उसे जगत में परिभ्रमण करनेवाले मूढ़ जीव सुखदायक मानते हैं, परन्तु वह जीव को सुखदायक नहीं है। वह तो जीव की विकारी दशा है।

पाप का वर्णन

संकलेश भावनि बँधै, सहज अधोमुख होई।
दुखदायक संसार मैं, पाप पदारथ सोइ॥29॥

अर्थः– जो अशुभ भावों से बँधता है तथा अपने आप नीच गति में गिरता है और संसार में दुःख का देनेवाला है, वह पाप पदार्थ है।

काव्य – 29 पर प्रवचन

संक्लेशभाव अर्थात् हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह, भोग, क्रोध, मान, माया, लोभ, इज्जत, कीर्ति आदि के जो भाव है, वे तीव्र मलिनभाव हैं, अतः उन्हें संक्लेशभाव कहते हैं। पुण्यभाव मन्द मलिनभाव है और पापभाव तीव्र मलिनभाव है। ऐसे हिंसा आदि के पापभाव नये मलिन कर्मबंध के कारण हैं।

देखो, कमाने का भाव भी पापभाव है, उससे नया पाप कर्म बँधता है।

मुमुक्षु– कमाने से पैसा मिले, उसे दान में देने से तो पुण्य होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री– धन में तृष्णा मन्द पड़े, राग मन्द हो तो पुण्य बँधता है; कोई पैसे से पुण्य नहीं बँधता और राग की मन्दता से पुण्य बँधता है तो भी जगत में सुख मिलता है, उससे आत्मा को कुछ लाभ नहीं होता।

'सहज अधोमुख होई'– जैसे लोहे के गोले को पानी में डाले तो वह सहज ही नीचे जाता है, उसको धक्का नहीं देना पड़ता; उसीप्रकार पापभाव के फल में जीव सहज ही नीची गति में जाता है।

'दुखदायक संसार में' – अर्थात् जहाँ प्रतिकूल संयोग मिलें– ऐसे स्थान में ही वह जाता है। **'पाप पदारथ सोई'**– अर्थात् ऐसे संक्लेश भावों को पाप पदार्थ कहा जाता है।

अब आस्रव तत्त्व का वर्णन करते हैं। पुण्य–पाप दोनों भाव आस्रव हैं और नवीन कर्म बंध के कारण हैं।

आस्रव का वर्णन

जोई करमउदोत धरि, होइ क्रिया रसरत्त।
करषै नूतन करमकौ, सोई आस्रव तत्त॥30॥

अर्थः– कर्म के उदय में योगों की जो राग सहित प्रवृत्ति होती है वह नवीन कर्मों को खींचती है, उसे आस्रव पदार्थ कहते हैं।

काव्य – 30 पर प्रवचन

आस्रव अर्थात् आना, जिसभाव से नये कर्म आवें, उसे आस्रव कहते हैं।

'जोई करम उदोत धरि'– जब कर्म का उदय आता है, तब उसमें जुड़ान होने से जीव को पुण्य और पाप के भाव होते हैं। कर्म के उदय में योगों की जो रागसहित परिणति होती है, वह नवीन कर्मों को खींचती है, उसे आस्रव पदार्थ कहते हैं।

भगवान आत्मा अपने ज्ञानानन्दस्वभाव को भूलकर हिंसा, झूठ, चोरी की पाप प्रवृत्ति में अथवा दया, दान, भक्ति आदि पुण्य प्रवृत्ति में रसपूर्वक

जुड़ता है, तब नये कर्म बँधते हैं; क्योंकि वे दोनों राग की क्रिया हैं, आत्मा की धार्मिक क्रिया नहीं है; परन्तु जीवों को, धर्म की क्रिया क्या है और राग की क्रिया क्या है, उसकी ही खबर नहीं है। कर्म के उदय में जुड़ने से तो राग की ही क्रिया होती है और आनन्दस्वरूप आत्मा में रस जोड़ने से धर्म की -आनन्द की क्रिया प्रकट होती है।

राग के रसवाली क्रिया कर्मों को खींचती है, इससे नये कर्म बँधते हैं। हिंसा, झूठ आदि तो राग है ही; परन्तु सम्मेदशिखर की यात्रा आदि शुभक्रिया में राग का रस है वह कर्म को खींचने में निमित्त है, कर्म के अभाव में निमित्त नहीं - ऐसा यहाँ कहते हैं। परन्तु तत्त्व क्या है यह इसके ज्ञान में नहीं आता, अत: अनादि से गड़बड़ खड़ी हुई है। शास्त्र पढ़े, बाँचे, विचारे; परन्तु अन्दर से मान्यता में गड़बड़ है, उसे नहीं निकालता।

त्रिकाली वस्तुस्थिति क्या है, वर्तमान दशा में विकृति क्या है, वह विकृति कैसे मिटे; उसकी अज्ञानी जीव को खबर नहीं है। ऐसे तत्त्व की दृष्टि बिना धर्म हो जाये ऐसा तीन काल में भी सम्भव नहीं है।

जिसके द्वारा नये कर्म खिचें- ऐसा हिंसा, झूठ, विषय आदि या दया, दानादि शुभ-अशुभ क्रिया को आस्रवतत्त्व कहते हैं। *क्रमशः*

छपते-छपते...

राष्ट्रीय जैनदर्शन विद्वत् संगोष्ठी

श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ एवं श्री दिगम्बर जैन दिव्यदेशना ट्रस्ट, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन उस्मानपुर एवं मेरठ द्वारा तीर्थधाम चिदायतन, हस्तिनापुर में गुरुवार, दिनांक 13 फरवरी से रविवार, 16 फरवरी 2020 तक राष्ट्रीय जैनदर्शन विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न होगी। जिसमें शताधिक विद्वानों एवं अतिथियों की उपस्थिति रहेगी। विस्तृत समाचार आगामी अंक में दिया जाएगा।

शुद्धोपयोगरूप धर्म ही मोक्षमार्ग है

हे पंच परमेष्ठी भगवन्तों! वीतराग के इस आनन्द-उत्सव में पधारो... पधारो... पधारो।

श्री कुन्दकुन्दस्वामी शुद्धोपयोग से मोक्षलक्ष्मी की साधना करते हुए उसके मंगलरूप कहते हैं कि—अहो, इस मोक्षलक्ष्मी के स्वयंवर में मैं पंच परमेष्ठी भगवन्तों को मेरे आँगन में बुलाता हूँ; हे पंच परमेष्ठी भगवन्तों! हे विदेहक्षेत्र में विराजमान सीमन्धर भगवन्तों! गणधर भगवन्तों! आप सभी वीतराग के इस आनन्द-उत्सव में पधारो.. पधारो...। मेरी शुद्ध चैतन्यसत्ता का निर्णय करके उसमें आपको पधराता हूँ, और समस्त रागादि परभावों को जुदा करता हूँ, ऐसे मंगलपूर्वक मोक्ष को साधने का यह मंगल स्तम्भ रोपा जाता है।

शुद्धोपयोग धर्म, वही मोक्षमार्ग है, उसका अलौकिक वर्णन इस प्रवचनसार में है। जैन मुनि ऐसे शुद्धोपयोगरूप परिणमे हैं। अहा, धन्य उनका अवतार! धन्य उनकी दशा!! मोक्ष उनको अत्यन्त निकट है। चैतन्य के केवलज्ञान के कपाट खोलने के लिए वे कटिबद्ध हुए हैं—ऐसी मुनिदशा होती है। ऐसे मुनि को तो हम 'भगवान' मानते हैं। समस्त परिग्रह छोड़कर, आत्मज्ञान के उपरान्त शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म को अंगीकार किया है। कदाचित् शुभ उपयोग होता है, परन्तु उससे उदासीन है, अशुभ परिणति तो उनकी होती ही नहीं; देह की क्रिया सहजरूप से अनेक प्रकार की होती है, उसमें खींचतान नहीं करते। बाह्य में सम्पूर्ण दिगम्बर जैन सौम्य मुद्रा के धारक और अन्तर में शुद्धोपयोग परम समता के धारक ऐसे वीतरागी सन्त-मुनियों के चरणों में नमस्कार हो... नमस्कार हो... णमो लोए सव्वसाहूणं।

अहो, परम पद को प्राप्त हुए ऐसे पंच परमेष्ठी भगवन्तों को नमस्कार किया, उसमें शुद्धात्मा का ही आदर है। मुनियों को नमस्कार किया, उन

मुनियों को शुद्धोपयोग है तथा साथ में अभी विकल्प भी है, परन्तु वह विकल्प कुछ वन्दनीय नहीं, वन्दनीय तो शुद्धोपयोग है—ऐसे विवेकपूर्वक नमस्कार किया है।

नमस्कार करने के समय स्वयं को जो शुभविकल्प है, उसे वह आदरणीय नहीं मानता; नमस्कार करनेयोग्य जो शुद्धोपयोग है, उसे ही आदरणीय मानता है। यदि राग को आदरणीय माने तो सच्चा नमस्कार नहीं होता; क्योंकि वह तो राग की ओर झुक गया है।

पंच परमेष्ठी—उनमें चैतन्यसत्तावाले अनेक तीर्थंकर लाखों अरिहन्त, अनन्त सिद्ध भगवान तथा शुद्धोपयोगरूप परिणमे हुए करोड़ों मुनिवर... उन्हें पहिचानकर जिस ज्ञान ने उनकी शुद्धसत्ता का स्वीकार किया, उस ज्ञान की शक्ति कितनी ? वह ज्ञान, राग में नहीं रुका; उसने तो राग से पार होकर अपने सर्वज्ञस्वभाव को स्वसंवेदनप्रत्यक्षरूप किया है। इस प्रकार अपने शुद्ध आत्मतत्त्व के निर्णयपूर्वक पंच परमेष्ठी को सच्चा नमस्कार होता है; वह मोक्ष के उत्सव का अपूर्व मंगलाचरण है। सम्यग्दर्शन भी अतीन्द्रिय आनन्द का उत्सव का प्रसंग है, तथा मुनिदशा तो उग्र अतीन्द्रिय आनन्द के उत्सव का प्रसंग है, उसका यह मंगल मुहूर्त होता है।

जेष्ठ कृष्ण अष्टमी के दिन समयसार गाथा 6 में बताया कि देखो, यहाँ आत्मा का शुद्धस्वरूप दिखाते हैं। 'आत्मा शुद्ध है' ऐसा कब कहा जाता है ?—कि जब आत्मा के सन्मुख होकर उसकी उपासना करे तब आत्मा को शुद्ध जाना—ऐसा कहा जायेगा।

कोई कहे—आपने आत्मा को शुद्ध कहा, सो हमने स्वीकार लिया!

उसे आचार्यदेव कहते हैं कि—भाई! किसके सन्मुख देखकर तूने स्वीकार किया ? मात्र शब्द सुनकर 'हाँ' कहे, वह तो विकल्प है, उसको यथार्थ स्वीकार नहीं कहते। शब्दों के वाच्यरूप स्ववस्तु अन्तर में कैसी है, उसके लक्ष्यपूर्वक ही उसका सच्चा स्वीकार होता है। वस्तु स्वयं के ज्ञान में आये, तभी उसका सच्चा स्वीकार होता है। ज्ञान के बिना अज्ञान में स्वीकार

किसका ? इस प्रकार स्वसन्मुख होकर ही शुद्ध आत्मा का स्वीकार होता है। इसलिये कहा है कि समस्त अन्य द्रव्यों से भिन्नरूप उपासना करने में आये, तब ज्ञायकभाव को 'शुद्ध' कहा जाता है। शुद्ध आत्मा की उपासना में अनन्त गुणों की निर्मल पर्यायों का समावेश हो जाता है।

प्रश्न—वस्त्रसहित दशा में ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव होता है ?

उत्तर—हाँ, ऐसे आत्मा का निर्विकल्प अनुभव सवस्त्रदशा में भी हो सकता है; तथा ऐसा अनुभव करे, तभी सम्यग्दर्शन होता है। पश्चात् मुनिदशा में तो बहुत ही उग्र निर्विकल्प अनुभव बारम्बार होता है। गृहस्थ को तो कभी-कभी निर्विकल्प अनुभव होता है; परन्तु ऐसे अनुभव से ही धर्म का प्रारम्भ होता है, इसके बिना धर्म नहीं होता।

आत्मा 'ज्ञायकस्वभावी' है।

'ज्ञायक' पर को जानता है—ऐसा ज्ञेय-ज्ञायकपने का व्यवहार है; तो भी ज्ञेय की उपाधि उसे नहीं है। ज्ञेय है, इसलिए इसको ज्ञायकपना है—ऐसा नहीं, ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं; परज्ञेय की ओर न देखे और स्वयं अपने स्वरूप को ही स्वसन्मुख होकर जाने, तब भी ज्ञायक तो ज्ञायक ही है—परज्ञेयों की अपेक्षा ज्ञायक की नहीं। पर सन्मुख होकर जाने, ऐसा उसका स्वभाव नहीं, इसलिए ज्ञान में पर की उपाधि नहीं।

अहो, ज्ञायक का ज्ञायकपना स्वत: अपने से ही है। परज्ञेय को जानने के समय भी वह तो स्वयं से ही ज्ञायक है; तथा परज्ञेय को न जाने, तब स्वज्ञेय को (स्वयं को) जानता हुआ वह स्वयं 'ज्ञायक' ही है। स्व-परप्रकाशक शक्ति स्वयं अपने से है, उसमें परज्ञेय की उपाधि या आलम्बन नहीं।

आत्मा में वीतरागता की रचना करे, वह सच्चा आत्मवीर्य है, किन्तु रागादि विकार को उत्पन्न करके संसार में भ्रमण करे, उसे सच्चा आत्मवीर्य नहीं कहते। यहाँ तो जो मुमुक्षु चारों गतियों के दु:खों से डरकर आत्मा का हित करना चाहता है, उसकी बात है। चारों गतियों का जिसे भय हो, वह

उनके कारणरूप पुण्य को क्यों इच्छेगा ? जिसको पुण्य में मिठास लगती है, पुण्य का आदर है, उसे चारों गतियों का भय नहीं है, उसे नरक का भय है किंतु स्वर्ग की तो इच्छा है। जो पुण्य को इच्छता है, उसे स्वर्ग की इच्छा है, और जो स्वर्ग को इच्छता है, उसे संसार की इच्छा है। जिसे मोक्ष की इच्छा हो, वह संसार के कारणरूप शुभराग को कभी भला न माने; वह तो चैतन्यस्वभाव के आश्रय से प्रगट होनेवाले वीतराग भाव को ही भला मानता है। शुभराग का अंश भी धर्मी को कषाय की अग्नि समान लगता है। कहाँ वीतरागता की शान्ति और कहाँ राग की आकुलता ? जैसे शीतल जल में रहनेवाला मच्छ अग्नि में तो जलता है किन्तु गर्म रेत में भी उसे जलने का दु:ख होता है; उसी प्रकार चैतन्य में शुद्धोपयोग की जो वीतरागी शीतल शान्ति—उसमें रहनेवाले सन्तों को अशुभ की तो क्या बात, परन्तु शुभ में भी कषाय-अग्नि होने से आकुलता की जलन होती है, धर्मी उसे भी छोड़कर शुद्धोपयोगरूप समभाव को प्राप्त करना चाहता है, और वही मोक्षमार्ग है।

कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने कषाय-अंश ऐसे शुभ को छोड़कर अन्तर में शुद्धोपयोगरूप साम्यभाव को अंगीकार किया; अर्थात् आत्मा में साक्षात् मोक्षमार्ग परिणमित किया। देखो, मोक्षमार्ग प्रगट होता है, उसकी स्वयं जीव को खबर होती है। प्रथम निर्विकल्प अनुभूतिसहित सम्यग्दर्शन होता है, तब मोक्षमार्ग शुरु होता है। यहाँ तो सम्यग्दर्शन के उपरान्त चारित्रदशा की और उसमें भी शुद्धोपयोग की बात है। शुद्धोपयोग ही साक्षात् मोक्षमार्ग है।

ज्ञायकभाव का अनुभव कराने के लिए समयसार की छठवीं गाथा में पर्याय-भेदों का निषेध किया, अर्थात् पर्यायभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार छुड़ाया; और सातवीं गाथा में गुणभेद के लक्ष्यरूप व्यवहार को छुड़ाया है। इस प्रकार व्यवहार से पार एकरूप ज्ञायकभाव का निर्विकल्प अनुभव हो, तब शुद्ध आत्मा जानने में आता है। इस प्रकार भेदरहित शुद्ध आत्मा का अनुभव करके उसे शुद्ध आत्मा कहा है। विकल्प और भेद का अनुभव, वह अशुद्धता है; आत्मा के अनुभव में उसका अभाव है।

ऐसे आत्मा का अनुभव होने से चौथा गुणस्थान प्रगट हुआ, अर्थात् अपने में अपने परमात्मा का अनुभव हुआ; (परमात्मा की भेंट हुई)। इस परमात्मा में विभाव है ही नहीं, इसलिए उसकी चिन्ता परमात्मा में नहीं है। ऐसे आत्मा का अनुभव करनेवाला धर्मी कहता है कि अहा! ऐसा हमारा परमात्म तत्त्व! उसमें विभाव है ही कहाँ—कि हम उसको नष्ट करने की चिन्ता करें? हम तो विभाव से पार ऐसे अपने परम तत्त्व का ही अनुभव करते हैं। ऐसी अनुभूति, वही मुक्ति को स्पर्श करती है। इसके अतिरिक्त दूसरे किसी प्रकार से मुक्ति नहीं—नहीं।

जो शुद्ध परम तत्त्व है, उसके अनुभव में ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनन्द सभी का समावेश हो जाता है; किन्तु मैं ज्ञान हूँ—मैं दर्शन हूँ—मैं चारित्र हूँ—ऐसे विकल्पों का परम तत्त्व में प्रवेश नहीं है; अतः आत्मा को ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद से कहना, वह भी व्यवहार है, ऐसे व्यवहार के आश्रय से विकल्प होता है, शुद्धतत्त्व अनुभव में नहीं आता, अभेद के आश्रय से शुद्धतत्त्व का निर्विकल्प अनुभव होता है।

'निकटवर्ती शिष्य को' अभेद समझाते समय बीच में भेद आ जाता है। शिष्य कैसा है?—निकटवर्ती है, उसमें दो प्रकार हैं।

— एक तो स्वभाव के पास आया है और शीघ्र ही स्वभाव को अनुभवनेवाला है, इसलिए निकटवर्ती है।

— दूसरा, समझने की जिज्ञासापूर्वक ज्ञानी गुरु के निकट आया है, इसलिए निकटवर्ती है।

— इस रीति से भाव तथा द्रव्य उन दोनों प्रकार से निकटवर्ती है।

स्वभाव की बात सुनकर भड़ककर दूर नहीं भागता, परन्तु स्वभाव की बात सुनने के लिए प्रेम से नजदीक आता है, और सुनकर उसकी रुचि करके स्वभाव में नजदीक आता है। ऐसा निकटवर्ती शिष्य व्यवहार के भेदरूप कथन में न अटककर उसका परमार्थ समझकर आत्मा के स्वभाव का अनुभव कर लेता है। कैसा अनुभव करता है—कि अनन्त धर्मों को, जो पी गया है,

और जिसमें अनन्त धर्मों का स्वाद परस्पर किंचित् मिल गया है—ऐसे एक अभेद स्वभावरूप स्वयं को अनुभवता है। वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र के भेद का अनुभव नहीं करता, ऐसा अनुभव करने के लिए तत्पर होनेवाले निकटवर्ती शिष्य के लिए इस शुद्धात्मा का उपदेश है। स्वयं के स्वानुभव से ही ऐसा आत्मा प्राप्त होता है, दूसरी किसी रीति से प्राप्त नहीं होता।

धर्मी तथा धर्म के बीच स्वभावभेद नहीं; तथापि भेद का विकल्प करे तो एक धर्मी-आत्मा अनुभव में नहीं आता; भेदरूप व्यवहार से पार, अनंत धर्मस्वरूप एक आत्मा को सीधा लक्ष्य में लेने से निर्विकल्परूप से शुद्ध आत्मा अनुभव में आता है।

अपनी चैतन्यवस्तु का अनुभव करने पर गुण-गुणी भेद का विकल्प भी नहीं रहता, निर्विकल्प आनन्द का अनुभव रहता है। मात्र आनन्द का नहीं किन्तु अनन्त गुणों का रस अनुभव में एक साथ आता है। सम्यग्दर्शन होने पर ऐसी दशा होती है।

सम्यग्दर्शन के समय शुद्धोपयोग होता है; किन्तु 'यह शुद्धोपयोग और मैं आत्मा' ऐसा भेद भी वहाँ नहीं; अभेद एक वस्तु का ही अनुभव है। मैं शुद्ध हूँ—ऐसा भी विकल्प अनुभूति में नहीं। 'मैं ज्ञायक हूँ'—ऐसे विकल्प से क्या साध्य है ? उस विकल्प में आत्मा नहीं, विकल्प से पार होकर ज्ञान जब स्व-सन्मुख एकाग्र हुआ, तब आत्मा साक्षात् अनुभव में आया, तब वह ज्ञान इन्द्रियों से तथा आकुलता से पार होकर आत्मा के सन्मुख हुआ। आत्मा स्वयं के यथार्थ स्वरूप से अपने में प्रसिद्ध हुआ।—ऐसी सम्यग्दर्शन की रीति है।

मिथ्यात्व तो अनादि का है, लेकिन ज्ञान जहाँ जागृत हुआ व ज्ञानस्वभावरूप अपना निर्णय करके, राग से भिन्न होकर स्वसन्मुख हुआ, तब एक क्षण में सम्यग्दर्शन होता है। एक क्षण में मिथ्यात्व का नाश करके सम्यग्दर्शन प्रगट करने की आत्मा में अचिन्त्य शक्ति है।

सम्यग्दर्शन प्रगट करने के लिए आचार्यदेव शुद्ध आत्मा का स्वरूप

समझाते हैं, तब शिष्य आँखें फाड़कर अर्थात् समझने की जिज्ञासा से ज्ञान को एकाग्र करके लक्ष्य में लेता है; उसे शुद्धात्मा को लक्ष्य में लेने की भावना है। सुनते-सुनते उसे नींद नहीं आती, अथवा शंका नहीं होती या कंटाला नहीं आता, परन्तु समझने के लिए ज्ञान को एकाग्र करता है।

शुद्धात्मा का स्वरूप सुनते ही उसमें उपयोग एकाग्र करता है, प्रमाद नहीं करता, 'पीछे विचार करूँगा; घर जाकर करूँगा, फुरसत मिलने पर करूँगा'—ऐसी बेदरकारी नहीं करता, किन्तु तत्काल ही शुद्धात्मा में उपयोग को एकाग्र करके आनन्दपूर्वक अनुभव करता है।—ऐसी उत्तम पात्रतावाला शिष्य शीघ्र ही सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है। जैसे ऋषभदेव के जीव को जुगलिया के भव में मुनियों ने सम्यग्दर्शन का उत्तम उपदेश देकर कहा कि हे आर्य! तू अभी ऐसे सम्यक्त्व को ग्रहण कर (तत्गृहाणाद्य सम्यक्त्वं तत्लाभे काल एष ते।)—उसी समय अन्तर्मुख होकर उस जीव ने सम्यग्दर्शन प्रगट किया।—इस प्रकार यहाँ उत्तम पात्रतावाले जीव की बात की है।

श्रीगुरु ने ज्ञायकस्वभावी आत्मा को समझाने के लिए भेद से कहा कि 'ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आत्मा है', इतना सुनकर शिष्य दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद के विकल्प में खड़ा नहीं रहा, परन्तु भेद को छोड़कर अभेद में एकाग्र करके सीधा आत्मा को पकड़ लिया कि अहो! ऐसा मेरा आत्मा गुरु ने मुझे बताया। इस प्रकार श्रीगुरु ने भेद द्वारा अभेद आत्मा को समझाया तथा पात्र शिष्य भी तत्काल भेद का लक्ष्य छोड़कर अभेद आत्मा को समझ गया। विलम्ब नहीं किया, दूसरे किसी लक्ष्य में नहीं अटका, किन्तु शीघ्र ही ज्ञान को अन्तर में एकाग्र करके आत्मा को समझ गया; उसी समय अत्यन्त आनन्दसहित सुन्दर बोध तरंग उछलने लगी। अहा, ज्ञान के साथ परम आनन्द की लहरें उछल पड़ी... मानो परिपूर्ण आनन्द का सागर ही उछला हो। अपने में ही आनन्द का सागर देखा। निर्विकल्प अनुभूति से भगवान स्वरूप स्वयं ही अपने में प्रगट हुआ।

जैसे इस शिष्य ने तत्काल निर्विकल्प आनन्दसहित आत्मा का अनुभव किया, वैसे प्रत्येक जीव में ऐसा अनुभव करने की शक्ति है। वाणी में या विकल्प में कहीं भी न अटककर अन्तर में ज्ञान को एकाग्र किया, तभी अतीन्द्रिय ज्ञान की तरंगें परम आनन्द के अनुभवसहित प्रगट हुईं। सम्यग्दर्शन होने के समय का यह वर्णन है।

श्रोता-शिष्य ऐसा पात्र था कि भेद की दृष्टि छोड़कर सीधा अभेद में एकाग्र हो गया... भेद-व्यवहार-शुभ का आलम्बन छोड़ने में उसे संकोच नहीं हुआ; शुद्ध आत्मा को लक्ष्य में लेते ही अपूर्व आनन्द सहित ऐसा निर्मल ज्ञान प्रगट हुआ कि सभी भेद-व्यवहार-राग का आलम्बन छूट गया। ज्ञान और राग की अत्यन्त भिन्नता अनुभव में आ गई। ज्ञान के साथ आनन्द होता है; जिस ज्ञान में आनन्द का वेदन नहीं, वह सच्चा ज्ञान ही नहीं। आनन्दरहित मात्र ज्ञान के विकास को वास्तव में ज्ञान नहीं कहते। केवल परलक्ष्यी ज्ञान, वह सच्चा ज्ञान नहीं।

शिष्य सीधा अभेद में नहीं पहुँच सका था, तब तक बीच में भेद था, श्रीगुरु ने भी भेद से समझाया था, किन्तु वह भेद, भेद का आलम्बन कराने के लिए नहीं था, वक्ता या श्रोता किसी को भेद के आलम्बन की बुद्धि नहीं थी, उनका अभिप्राय तो अभेद वस्तु को ही बताकर उसी का अनुभव करने का था। उस अभिप्राय के बल से ज्ञान को अन्तर के अभेद स्वभाव में एकाग्र करके दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेद का अवलम्बन भी छोड़ दिया... और तत्काल ही महान अतीन्द्रिय आनन्दसहित सम्यग्ज्ञान की सुन्दर तरंगें उल्लसित हो उठीं... सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान तथा परम आनन्द हुआ। ऐसी निर्विकल्प अनुभूतिसहित शिष्य निज शुद्धात्मा का स्वरूप समझा।

जो ऐसे भाव से समयसार सुने, उसे भी निर्विकल्प आनन्द के अनुभव सहित सम्यग्दर्शन अवश्य होगा। यहाँ तो कहते हैं कि—विलम्ब न होकर तत्काल ही होगा। निज आत्मा की प्राप्ति के लिए जिसकी सच्ची तैयारी हो, उसे अवश्य एवं शीघ्र ही उसकी प्राप्ति हो जायेगी; अरे, आकाश में से

उतरकर सन्त उसे शुद्धात्मा का स्वरूप समझायेंगे।—जैसे महावीर के जीव को सिंह के भव में, और ऋषभदेव के जीव को भोगभूमि के भव में सम्यक्त्व प्रगट करने की तैयारी होने से ऊपर से गगन-विहारी मुनियों ने वहाँ उतरकर उनको आत्मा का स्वरूप समझाया, और उन जीवों ने भी सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। किस प्रकार से प्राप्त किया? वह बात इस गाथा में समझाई है। भेद का लक्ष्य छोड़कर, अनन्त धर्मों से अभेद आत्मा में ज्ञान को एकाग्र करने से, निर्विकल्प आनन्द के अनुभवसहित सम्यग्दर्शन प्राप्त किया... सुन्दर बोध तरंगें उल्लसित हुईं। इस प्रकार तत्काल सम्यग्दर्शन होने की रीति समझाकर सन्तों ने तो मार्ग सरल कर दिया है।

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक चार

....पृष्ठ 6 का शेष

आत्मा को समझने की जिज्ञासा

से भरा हुआ भगवान हूँ। ज्ञान और सुख के लिये मुझे किसी का अवलम्बन नहीं चाहिए। इस प्रकार स्वसंवेदन से अपने आत्मा की श्रद्धा करना चाहिए। जिन सिद्धभगवान को तू नमस्कार करता है, उनके समान होने का सामर्थ्य तुझमें है। आत्मा स्वयं परमात्मा होता है। 'अप्पा सो परमप्पा' (सब जीव सिद्ध के समान हैं।)

अरे जीव! ऐसे स्वरूप को साधने के समय तू निश्चिंत होकर कहाँ मोहनिद्रा में पड़ा है? तू जाग रे जाग! तेरा चैतन्य-निधान लुटा जा रहा है, उसे सँभाल! आत्मभान बिना बाह्यक्रिया और राग के मोह में तू संसार में भ्रमण कर रहा है, उससे छूटने का अवसर अब तुझे मिला है, तो सत्समागम से आत्मस्वभाव का निर्णय कर। ऐसा दृढ़ निर्णय कर कि निर्विकल्पता होकर स्वसंवेदनप्रत्यक्ष अनुभव हो। ●●

आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष 27, अंक तीन

आचार्यदेव परिचय शृंखला

भगवान आचार्यवर
श्री अमृतचन्द्रदेव

भगवान आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार और पंचास्तिकाय के आद्य टीकाकार आचार्य अमृतचन्द्र के नाम से प्राय: सभी अध्यात्मिक सुपरिचित हैं। यद्यपि जैन अध्यात्म के पुरस्कर्ता श्री कुन्दकुन्द आचार्यदेव हुए; किन्तु अध्यात्म की सरिता प्रवाहित करने का श्रेय आचार्य अमृतचन्द्रजी को ही प्राप्त है।

आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य अमृतचन्द्र के मध्य में लगभग एक हजार वर्षों का अन्तराल है और इस अन्तराल में प्रख्यात जैनाचार्य हुए हैं। उनमें से आचार्य पूज्यपाद तो भगवान कुन्दकुन्द से प्रभावित हैं। उनके समाधितन्त्र और इष्टोपदेश पर भगवान आचार्य कुन्दकुन्द के पाहुड़ों का प्रभाव है। सर्वार्थसिद्धि टीका में पंच परावर्तन सम्बन्धी पाँच गाथाएँ भगवान आचार्य कुन्दकुन्द के बारस अणुवेक्खा से संगृहित हैं। आचार्य अकलंकदेव ने तत्त्वार्थवार्तिक में प्रवचनसार से एक गाथा उद्धृत की है। आचार्य विद्यानन्दजी ने अपनी अष्टसहस्री में पंचास्तिकाय की गाथा 'सत्ता' आदि का संस्कृत रूपान्तर दिया है। किन्तु भगवान आचार्य कुन्दकुन्दजी के मौलिक ग्रन्थ समयसार को किसी ने स्पर्श नहीं किया। यह श्रेय तो आचार्य अमृतचन्द्रजी को ही प्राप्त है। उन्होंने ही सर्व प्रथम उसका मूल्यांकन किया और ऐसा किया कि आचार्य कुन्दकुन्ददेव जैनाकाश में सूर्य की तरह प्रकाशित हो गये। आचार्य कुन्दकुन्ददेव को कुन्दनवत् प्रकट करने का श्रेय आचार्य अमृतचन्द्रजी को ही है। अत: उनकी वाणी के प्रकटन और प्रसार में जो स्थिति भगवान महावीर और गौतम गणधर की है, वही स्थिति जैन अध्यात्म के प्रकटन और प्रसार में आचार्य कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र की है। जैसे भगवान महावीर की वाणी को द्वादशांग श्रुत में गौतम गणधरदेव ने निबद्ध करके प्रवाहित किया। उसी प्रकार आचार्य कुन्दकुन्द के द्वारा

पुरस्कृत अध्यात्म को अपनी टीकाओं द्वारा आचार्य अमृतचन्द्र ने निबद्ध और प्रवाहित किया। उनके पश्चात् ही अन्य टीकाकारों ने भी उन पर अपनी टीका रची।

इस तरह अध्यात्मरूपी कमल का सौरभ फैलाकर भी, आचार्य अमृतचन्द्र अपने सम्बन्ध में मूक हैं। उन्होंने अपनी कृतियों में अपना नामोल्लेख मात्र किया है। समयसार और पंचास्तिकाय की टीका के अन्त में वे लिखते हैं :—

'स्वशक्तिसंसूचितवस्तुतत्त्वैर्व्याख्या कृतेयं समयस्य शब्दैः।
स्वरूपगुप्तस्य न किंचिदस्ति कर्तृव्यमेवामृतचन्द्रसूरेः॥'

अर्थ :- अपनी शक्ति से वस्तु तत्त्व को सम्यक्रूप से सूचित करनेवाले शब्दों ने यह समय की व्याख्या की है। अपने स्वरूप में लीन अमृतचन्द्रसूरि का जो कुछ भी कर्तृत्व नहीं है।

इसी तरह तत्त्वार्थसार के अन्त में कहा है :—

वर्णाः पदानां कर्तारो वाक्यानां तु पदावलिः।
वाक्यानि चास्य शास्त्रस्य कर्तृणि पुनर्वयम्॥

अर्थ :- अक्षर पदों के कर्ता हैं, पद वाक्यों के कर्ता हैं। वाक्य इस शास्त्र के कर्ता हैं, हम नहीं।

पुरुषार्थसिद्धिउपाय के अन्त में भी यही भाव व्यक्त किया है। स्वकर्तृत्व का यह परिचय जैन अध्यात्म की अमिट छापों को व्यक्त करता है। यह बतलाया है, कि भगवान आचार्य अमृतचन्द्र जैन अध्यात्म के कोरे व्याख्याता नहीं थे, उन्होंने उसे अपने जीवन में आत्मसात् कर लिया था। आपका एक-एक शब्द बहुमूल्य है, एक-एक वाक्य में अमृत भरा है।

जैन वस्तु विज्ञान के तो वे परम प्रवीण आचार्य हैं ही। अनेकान्त उनकी तुला है। उस तुला के दो पलड़े हैं—निश्चय और व्यवहार। उनके द्वारा वह वस्तुतत्त्व को मध्यस्थभाव से समीक्षा करते हैं। उनके अन्तस्तल में दोनों नयों के प्रति पक्षातिक्रान्तता वर्तती थी। दोनों में समभावरूप ज्ञान

रखते हुए भी वे मोक्षमार्ग में उनकी उपयोगितारूप मूल्य की दृष्टि से ही विचार करते हैं।

आचार्य कुन्दकुन्दजी ने अपने समयसार के प्रारम्भ में जो निश्चय को भूतार्थ और व्यवहार को अभूतार्थ कहा है तथा शुद्धनय का स्वरूप कहा है, आचार्य अमृतचन्द्रजी सर्वत्र उसी का अनुगमन करते हैं। हमें टीकाओं में खोजने पर भी ऐसे स्थल नहीं मिले, जहाँ आचार्य अमृतचन्द्रजी ने आचार्य कुन्दकुन्दजी का अतिक्रमण किया हो, या उनकी ओट में अपना कोई स्वतन्त्र मन्तव्य निर्दिष्ट किया हो। वे एकान्ततः आचार्य कुन्दकुन्दजी के अनुगत हैं। आचार्य कुन्दकुन्दजी ने अपने समयसार के द्वारा अध्यात्म का जो वृक्षारोपण किया था, आचार्य अमृतचन्द्रजी ने उसे केवल समृद्ध करके पुष्पित और फलित किया है। जैसे वृक्ष के पत्ते, पुष्प, फल सब उससे अनुप्राणित रहते हैं, वही स्थिति आचार्य अमृतचन्द्रजी के वचनों की है। उनका एक-एक पद आचार्य कुन्दकुन्दजी के अध्यात्म से अनुप्राणित है।

समयसार की व्याख्या का आरम्भ करते हुए तीसरे कलश में जो भाव व्यक्त करते हैं, उसे पढ़कर किसका तन-मन रोमांचित नहीं होता। वह कहते हैं—'मैं शुद्धद्रव्यार्थिक नय की दृष्टि से शुद्ध चैतन्यमात्र मूर्ति हूँ। परन्तु मेरी परिणति मोह के उदय का निमित्त पाकर मलिन हो गयी है—राग-द्वेषरूप हो रही है। शुद्ध आत्मा का कथन करनेरूप इस समयसार ग्रन्थ की व्याख्या करने का यह फल चाहता हूँ, कि मेरी परिणति रागादि से रहित होकर शुद्ध हो, मुझे शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो।' कितनी पवित्र भावना है! उनकी यह भावना अवश्य ही समयसार के पठन, चिन्तन और मनन का परिणाम हैं। उन्होंने अवश्य ही आचार्य कुन्दकुन्दजी के ग्रन्थों का तलस्पर्शी अध्ययन, मनन और चिन्तन किया था और उससे उन्हें जो आत्मबोध हुआ था—उससे उनकी अन्तर्दृष्टि अवश्य ही सविशेष खुल गयी होगी, जिसके फलस्वरूप ही उन्हें आचार्य कुन्दकुन्दजी के ग्रन्थरत्नों की इतनी सुन्दर

समृद्ध टीकाएँ रचने की अन्त:प्रेरणा हुई होगी। ये टीकाएँ भक्त की भगवान के प्रति कुसुमांजलि जैसी है।

पण्डित आशाधरजी ने अपने अनगारधर्मामृत की टीका में उनके नाम के साथ 'ठक्कुर' शब्द का प्रयोग किया है। 'ठक्कुर' और 'ठाकुर' एकार्थवाची है। जैनेतरों में आज भी 'ठाकुर' शब्द का व्यवहार पाया जाता है। जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर। जैनाचार्यों में ऐसे भी आचार्य हुए हैं, जो जन्म से जैन नहीं थे। जैसे आचार्य विद्यानन्दजी, किन्तु उनकी कृतियाँ अनमोल हैं। आचार्य अमृतचन्द्रजी भी यदि ऐसे क्षत्रियकुल से सम्बन्धित ही हों तो कोई आश्चर्य नहीं है, क्योंकि उनकी टीका के शब्दों में भी यही शौर्य उभरा हुआ स्पष्ट प्रतीत होता है। जैसे आचार्य समन्तभद्रजी के आप्तमीमांसा को सुनकर आचार्य विद्यानन्दजी 'विद्यानन्द' (विद्या+आनन्द) बन गये, सम्भव है, उसी प्रकार समयसार आदि के अध्ययन ने आचार्य अमृतचन्द्रजी को 'अमृतचन्द्र' बना दिया हो। हमें तो उनके समयसार के तीसरे कलश में इसी की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है।

समयसार की टीका रचते हुए जो उनकी भावना थी, कि उन्होंने तीसरे कलश में व्यक्त किया है। प्रवचनसार की टीका के प्रारम्भ में वे कहते हैं, कि परमानन्दरूपी अमृत को पीने के इच्छुक जनों के हित के लिये यह वृत्ति की जाती है। इस पर से ज्ञात होता है कि समयसार की टीका उन्होंने स्वहित हेतु लिखी हो और प्रवचनसार की टीका परमानन्दरूपी अमृत के पिपासुजनों के लिये लिखी हो।

उनकी टीकाओं को पढ़कर कोई कल्पना कर सकता है, कि भगवान आचार्य कुन्दकुन्द ने ही भगवान आचार्य अमृतचन्द्र के रूप में अवतार लिया न हो! उनकी टीकाएँ मात्र शब्दार्थ व्याख्यायें नहीं हैं, किन्तु प्रत्येक गाथासूत्र में भरे हुए रहस्यों को उद्घाटित करती है। अत: उसे टीका न कहकर भाष्य कहना ही उचित होगा। (जिसमें सूत्र के अर्थ के साथ उनके आधार से उसका रहस्य भी कहा जाता है, उसे भाष्य कहते हैं।) आचार्य

अमृतचन्द्रजी की टीका का यही रूप है। उनकी भाषा तो संस्कृत गद्यात्मक अति मनोहर है। शब्दों का चयन अध्यात्म के सर्वथा अनुरूप है। इस प्रकार की अनुप्रासात्मक श्रुतिमधुर शब्दावली अन्य जैन टीकाओं में नहीं पायी जाती। गद्य और पद्य दोनों में एकरूपता है। गद्य में भी पद्य का आनन्द आता है।

उनका मौलिक ग्रन्थ 'लघुतत्त्वस्फोट' के अन्तिम पद्य में उन्होंने अपने नाम के साथ 'कवीन्द्र' विशेषण का प्रयोग किया है। उनके इस ग्रन्थ में उनके कवीन्द्रत्व का स्पष्ट दर्शन पद-पद पर होता है। काव्यशास्त्र की सब विशेषताएँ उनकी इस कृति में है। यों तो उनकी उपलब्ध रचनाएँ ही उनके वैदुष्य और रचनाचातुर्य की गरिमा के लिये पर्याप्त थी, किन्तु 'लघुतत्त्वस्फोट' ने तो उनकी उस गरिमा पर कलशारोहण कर दिया है।

जैनतत्त्व की जिस निधि ने आचार्य अमृतचन्द्र को सर्वाधिक आकृष्ट किया है, वह है अनेकान्त और ज्ञानज्योति। उन्होंने अपनी रचनाओं के प्रारम्भ में किसी तीर्थंकर आदि व्यक्ति को नमस्कार न करके आत्मज्योति और अनेकान्त को ही नमस्कार किया है। समयसार के प्रारम्भ में समयसार को नमस्कार करके अनेकान्तमयी मूर्ति का स्मरण किया है। प्रवचनसार की टीका के प्रारम्भ में ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा को नमस्कार करे अनेकान्तमय तेज का जयकार किया है। पंचास्तिकाय की टीका में उक्त प्रकार से परमात्मा को नमस्कार करके स्यात्कारजीयता जैनी सिद्धान्त पद्धति का जयकार किया है। पुरुषार्थसिद्धियुपाय के प्रारम्भ में परमज्योति का जयकार करके अनेकान्त को नमस्कार किया है। तत्त्वार्थसार के प्रारम्भ में भी जिनेश की ज्ञानज्योति का जयकार है। अनेकान्त सिद्धान्त के प्रति इतनी अधिक भक्ति की अभिव्यक्ति तो दर्शनशास्त्र के प्रतिष्ठाताओं की कृतियों में भी नहीं मिलती।

आपकी टीकाओं जैसी टीका अब तक अन्य किसी जैनग्रन्थ की नहीं लिखी गयी है। आपकी टीकाओं के पाठक आपकी अध्यात्मरसिकता,

आत्मानुभव, प्रखर विद्वत्ता, वस्तुस्वरूप को न्याय से सिद्ध करने की असाधारण शक्ति, जिनशासन का अत्यन्त गहरा ज्ञान, निश्चय-व्यवहार का सन्धिबद्ध निरूपण करने की विरल शक्ति और उत्तम काव्यशक्ति का पूरा ख्याल आ जाता है। अति संक्षेप में गम्भीर रहस्यों को रख देने की आपकी शक्ति विद्वानों को आश्चर्यचकित करती है। आपकी दैवी टीकाएँ श्रुतकेवली के वचनों जैसी है। जैसे मूल शास्त्रकार के शास्त्र, अनुभव, युक्ति आदि समस्त समृद्धि से समृद्ध हैं, वैसे टीकाकार की टीकाएँ भी उन-उन सर्व समृद्धि से विभूषित हैं। शासनमान्य भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने इस कलिकाल में जगद्गुरु तीर्थंकरदेव जैसा कार्य किया है और अमृतचन्द्राचार्यदेव ने मानों वे कुन्दकुन्दाचार्यदेव के हृदय को स्पर्श करते हों, उस तरह उनके गम्भीर आशयों को यथार्थरूप से व्यक्त करके उनके गणधर जैसा कार्य किया है।

इससे स्पष्ट है कि आचार्यदेव परमागम के गहरे अभ्यासी थे और उनको उसके प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। ऐसे प्रामाणिक ग्रन्थकार की रचनाओं के सम्बन्ध में अन्यथा कल्पना करना सूरज पर धूल फेंकने जैसा है।

पंचास्तिकाय की टीका के प्रारम्भ में वे उसकी व्याख्या को 'द्विनयाश्रया'—दो नयों का आश्रय करनेवाली कहते हैं। इस प्रकार जिनागम की व्याख्या दो नयों के आश्रय लेकर करनेवाले वे ही आद्य टीकाकार हैं। उन्हीं का प्रभाव उनके पश्चात् होनेवाले आध्यात्मिक टीकाकारों और ग्रन्थकारों में देखने में आता है। इस प्रकार वे इस आध्यात्मिक युग के सृष्टा हुए हैं। भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव के प्राभृतत्रय के अन्य टीकाकार श्री जयसेनाचार्यदेव ने अपनी टीकाओं में अनेक स्थान पर श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव की टीकाओं का बहुत आदर सहित स्मरण किया है।

हमारे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी अपने परमागम

समयसार के प्रवचनों में श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव व उनकी आत्मख्याति टीका की भूरि-भूरि प्रशंसा करते फरमाते हैं कि यह टीका पंचम काल में व भरतक्षेत्र में अजोड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री ने टीका सहित समयसार ग्रन्थ पर शुरु से अन्त तक १९ बार सभा में प्रवचन किये थे, तदुपरान्त आपके अन्य ग्रन्थों व पुरुषार्थसिद्धिउपाय ग्रन्थ पर भी उन्होंने कई बार प्रवचन किये थे।

आपकी प्रसिद्ध रचनाएँ—1. समयसार की आत्मख्याति टीका, 2. प्रवचनसार की तत्त्वदीपिका टीका, 3. पंचास्तिकायसंग्रह की समयव्याख्या टीका, 4. पुरुषार्थसिद्धिउपाय, 5. तत्त्वार्थसार, 6. लघुतत्त्वस्फोट। इसमें प्रथम तीन टीका ग्रन्थ हैं व अन्तिम तीन आचार्यदेव की मौलिक रचनाएँ हैं।

आचार्य अमृतचन्द्रजी का समय विक्रम की दसवीं शताब्दी (ई. स. 905-955) है।

ऐसे महान आचार्यदेव को अनहद श्रद्धा व भक्ति हृदय से कोटि-कोटि वन्दन!!

वैराग्यसमाचार

अलीगढ़ : श्रीमती विमलेशकुमारी जैन धर्मपत्नी स्व. श्री प्रकाशचन्दजी जैन का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री विनोदकुमार जैन की सासु माँ थीं।

छिन्दवाड़ा : श्री अजितकुमारजी जैन (रंगमहल परिवार) का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप पण्डित ऋषभकुमार जैन के बड़े भाई एवं पण्डित पीयूष जैन जयपुर के ससुर थे।

छिन्दवाड़ा : श्री अजितकुमारजी जैन का शान्तपरिणाम से देह-परिवर्तन हो गया है। आप श्रीमती जीजीबाई के पतिदेव हैं। आपके परिवार द्वारा तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित छहढाला का प्रकाशन किया गया था।

दिवंगत आत्मा शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

समाचार-दर्शन

आचार्य कुन्दकुन्ददेव का जन्मोत्सव सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : बसन्त पंचमी के पावन अवसर पर श्री बाहुबली जिनालय में वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु भगवन्तों की जयघोष के साथ जिनशासन के मंगलगानों से गुंजायमान हो उठा। मंगलमय अवसर था कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य कुन्दकुन्ददेव के जन्मोत्सव का। जिसमें आदिनाथ विद्यानिकेतन के मङ्गलार्थी छात्र और पण्डित सुधीर शास्त्री, डॉ. सचीन्द्र जैन उपस्थित थे। आचार्य कुन्दकुन्द जिनके नाम से दिगम्बर परम्परा पंचम काल के अन्त तक चलेगी।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानन्द सम्पन्न

सनावद :- पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल प्रभावना योग में तथा देश भर में ख्याति प्राप्त प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी पण्डित जतीशचन्दजी शास्त्री भाईजी के प्रतिष्ठाचार्यत्व में उनके ही गृह नगर सनावद में श्री 1008नेमिनाथ दिगम्बर जैन पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन अनेक कीर्तिमानों एवं सफलताओं के साथ भव्यरूप से दिनांक 7 जनवरी से 12 जनवरी 2020 तक सानन्द सम्पन्न हुआ।

महोत्सव के सम्पूर्ण मांगलिक कार्यक्रम पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर एवं सहयोगी पण्डित अशोक लुहाड़िया के निर्देशन में किया गया। महामहोत्सव में अध्यात्म की गंगा पूज्य गुरुदेवश्री के वीडियो प्रवचन द्वारा प्रवाहित की गयी साथ ही साथ पण्डित राजेन्द्र जैन जबलपुर, ब्रह्मचारी हेमचन्दजी हेम देवलाली, ब्रह्मचारी सुमतप्रकाशजी खनियांधाना, पण्डित अभयकुमारजी देवलाली, पण्डित देवेन्द्र जैन बिजौलिया, पण्डित प्रदीप झांझरी सूरत, पण्डित शैलेषभाई अहमदाबाद, पण्डित हेमन्तभाई गाँधी मुम्बई, डॉ. संजीव गोधा जयपुर, पण्डित अनिल शास्त्री भिण्ड, पण्डित ऋषभजी इंजीनियर इन्दौर, पण्डित धनसिंहजी पिड़ावा, पण्डित सिद्धार्थ

दोशी रतलाम, पण्डित रतन शास्त्री भोपाल इत्यादि अनेक विद्वानों का मंगल सानिध्य प्राप्त हुआ। महोत्सव में मुख्य पात्र माता-पिता श्री राजकुमार-मीना जैन भोपाल, सौधर्म इन्द्र श्री विनीत-मीनलजी बड़जात्या इन्दौर, कुबेर श्री राहुल-सुनीता गंगवाल जयपुर आदि रहे।

महोत्सव में सैकड़ों साधर्मियों ने लाभ लिया, यह अत्यन्त गौरव है। सम्पूर्ण महोत्सव समिति के अध्यक्ष श्री वसन्तभाई दोशी मुम्बई, कार्याध्यक्ष श्री विजय बड़जात्या इन्दौर, महामन्त्री श्री अशोक जैन भोपाल आदि समस्त महोत्सव समिति के कुशल मार्गदर्शन में सानन्द सम्पन्न हुआ। सम्पूर्ण कार्यक्रम में सनावद नगर के युवावर्ग एवं शास्त्री युवा विद्वानों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ।

प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी पण्डित जतीशभाई शास्त्री 'भाईजी' का अभिनन्दन समारोह

सनावद :- विगत 40 वर्षों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान को पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं, विधि-विधानों, शिविरों, कक्षाओं के माध्यम से देश भर में तत्त्व प्रचार के लिए दिन-रात परिश्रम करनेवाले आदरणीय भाईजी का सनावद पंचकल्याणक में श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट साधनानगर एवं मुमुक्षु समाज इन्दौर के तत्त्वावधान में राष्ट्रीयस्तर पर गठित अखिल भारतीय मुमुक्षु सम्मान समिति द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर सम्मान किया गया।

आपको ऐरावत हाथी पर बैठाकर बहुत ही उत्साहपूर्वक लाया गया एवं समिति तथा देश की प्रमुख संस्थाओं ने आप का अभिनन्दन किया। जिनमें इन्दौर, कोलकाता-मुम्बई-शाश्वतधाम उदयपुर, दिल्ली, बांसवाडा, सागर, जबलपुर, अहमदाबाद, तलोद, उज्जैन, खण्डवा, समर्पण ट्रस्ट आदि अनेक संस्थाओं के प्रमुखों ने अभिनन्दन पत्र भेंट कर अपनी ओर से सम्मान किया।

कार्यक्रम का संचालन पण्डित नगेशजी जैन पिडावा ने किया।

बालब्रह्मचारी यशपालजी जैन 'अन्नाजी' का सम्मान समारोह

कारंजा :- विगत 40 वर्षों से पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा उद्घाटित तत्त्वज्ञान (करणानुयोग) को प्रशिक्षण शिविरों, बाल शिविरों, कक्षाओं के माध्यम से देश भर में तत्त्व प्रचार के लिए दिन-रात परिश्रम करनेवाले आदरणीय अन्नाजी का कारंजा गोष्ठी के अवसर पर सम्मान किया गया।

इस अवसर पर बालब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री, पण्डित अभयकुमार जैन देवलाली, डॉ. राकेश जैन नागपुर, डॉ. शान्तिकुमार पाटील जयपुर, पण्डित अशोक लुहाड़िया मंगलायतन, पण्डित आलोकजी कारंजा, डॉ. संजीव गोधा जयपुर, पण्डित विपिन शास्त्री मुम्बई, पण्डित नन्दकिशोर काटोल, पण्डित गुलाबचन्द बोरालकर, पण्डित संजय राऊत, पण्डित जितेन्द्र राठी, पण्डित महावीर पाटील आदि महाराष्ट्र प्रान्त के विद्वान उपस्थित थे जिनके द्वारा भी सम्मान किया गया। कार्यक्रम संचालन पण्डित जितेन्द्र राठी द्वारा किया गया।

मोक्षमार्गप्रकाशक विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न

कारंजा : आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी जन्म त्रिशताब्दी महोत्सव के अन्तर्गत मोक्षमार्गप्रकाशक विद्वत् संगोष्ठी 17 से 19 जनवरी, 2020 तक सम्पन्न हुई।

इस अवसर पर बालब्रह्मचारी अभिनन्दन शास्त्री, पण्डित अभयकुमार जैन देवलाली, डॉ. राकेश जैन नागपुर, डॉ. शान्तिकुमार पाटील जयपुर, पण्डित अशोक लुहाड़िया मंगलायतन, पण्डित आलोकजी कारंजा, डॉ. संजीव गोधा जयपुर, पण्डित विपिन शास्त्री मुम्बई, पण्डित नन्दकिशोर काटोल, पण्डित गुलाबचन्द बोरालकर, पण्डित संजय राऊत, पण्डित जितेन्द्र राठी, पण्डित महावीर पाटील आदि महाराष्ट्र प्रान्त के विद्वान उपस्थित थे। जिनका लाभ प्राप्त हुआ।

श्रीमान सद्धर्मानुरागी बन्धुवर,

सादर जयजिनेन्द्र एवं शुद्धात्म सत्कार!

आशा है आराधना-प्रभावनापूर्वक आप सकुशल होंगे।

वीतरागी जिनशासन के गौरवमयी परम्परा के सूत्रधार पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रभावनायोग में निर्मित आपका अपना **तीर्थधाम मङ्गलायतन** सत्रह वर्षों से, सुचारुरूप से, अपने लक्ष्य की ओर निरन्तर गतिमान है।

वर्तमान काल की स्थिति को देखते हुए, अब **मङ्गलायतन** का जीर्णोद्धार एवं अनेक प्रभावना के कार्य, जैसे-भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, भोजनशाला, **मङ्गलायतन** पत्रिका प्रकाशन आदि कार्यों को सुचारू रूप से भी व्यवस्था एवं गति प्रदान करना है। यह कार्य आपके सहयोग के बिना, सम्भव नहीं हैं। इसके लिए हमने एक योजना बनायी है, जिसमें आपको एक छोटी राशि प्रतिमाह दानस्वरूप प्रदान करनी होगी। इस योजना का नाम - **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** रखा गया है। हम आपको इस महत्त्वपूर्ण योजना में सम्मानित सदस्य के रूप में शामिल करना चाहते है। **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आपको प्रतिमाह, मात्र एक हजार रुपये दानस्वरूप देने हैं।

मङ्गलायतन का प्रतिमाह का खर्च, लगभग दस लाख रुपये है। इस योजना के माध्यम से आप हमें प्रतिमाह 1,000 (प्रतिवर्ष 1000X12=12,000) रुपये दानस्वरूप देंगे। भारत सरकार ने **मङ्गलायतन** को किसी भी रूप में दी जानेवाली प्रत्येक दानराशि पर, आयकर अधिनियम की धारा 80जी के अन्तर्गत छूट प्रदान की है। आप इस महान कार्य में सहभागिता देकर, स्व-पर का उपकार करें।

आप इसमें स्वयं एवं अपने परिवारीजन, इष्टमित्र आदि को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित कर सकते हैं। साथ ही **तीर्थधाम मङ्गलायतन** द्वारा संचालित होनेवाले कार्यक्रमों में, आपकी सहभागिता, हमें प्राप्त होगी।

आप यथाशीघ्र पधारकर यहाँ विराजित जिनबिम्बों के दर्शन एवं यहाँ वीतरागमयी वातावरण का लाभ लेवें - ऐसी हमारी भावना है।

हार्दिक धन्यवाद एवं जयजिनेन्द्र सहित

अजितप्रसाद जैन	**स्वप्निल जैन**	**सुधीर शास्त्री**
अध्यक्ष	महामन्त्री	निदेशक

सम्पर्क-सूत्र : 9756633800 (सुधीर शास्त्री)
email - info@mangalayatan.com

मङ्गल वात्सल्य-निधि

सदस्यता फार्म

नाम .....

पता .....

..... पिन कोड .....

मोबाइल ..... ई-मेल .....

मैं **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** योजना की आजीवन सदस्यता स्वीकार करता हूँ, मैं प्रतिमाह एक हजार रुपये **'मङ्गल वात्सल्य-निधि'** में आजीवन जमा करवाता रहूँगा।

हस्ताक्षर

यह राशि आप प्रतिमाह दिनांक पहली से दस तक निम्न प्रकार से हमें भेज सकते हैं -

1. बैंक द्वारा

NAME	: SHRI ADINATH KUNDKUND KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	: HDFC BANK
BRANCH	: RAMGHAT ROAD, ALIGARH
A/C. NO.	: 50100263980712
RTGS/NEFTS IFS CODE	: HDFC0000380
PAN NO.	: AABTA0995P

2. Online : http://www.mangalayatan.com/online-donation/
3. ECS : Auto Debit Form के माध्यम से।

नवीन प्रकाशन - मोक्षमार्गप्रकाशक

तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रथम बार **आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी द्वारा विरचित मोक्षमार्गप्रकाशक की मूल हस्तलिखित प्रति से पुनः मिलान करके, आधुनिक खड़ी बोली में प्रकाशित हुआ है।** जो मुमुक्षु संस्था, समाज स्वाध्याय हेतु मंगाना चाहते हैं। वे डाकखर्च देकर, नि:शुल्क मंगा सकते हैं।

छहढाला (हिन्दी) नवीन संस्करण **सशुल्क**

ग्रन्थ मँगाने का पता— प्रकाशन विभाग, तीर्थधाम मङ्गलायतन,
अलीगढ़-आगरा राजमार्ग, सासनी-204216
सम्पर्क सूत्र-9997996346 (कार्या०); 9756633800 (पण्डित सुधीर शास्त्री)
Email : info@mangalayatan.com; website : www.mangalayatan.com

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अष्टाह्निका महापर्व के अवसर पर सत्साहित्य मँगायें

निःशुल्क मँगायें (मात्र डाकखर्च देकर)

मंगल समर्पण

मोक्षमार्गप्रकाशक (नवीन संशोधित)

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (छह भाग)

(पण्डित कैलाशचन्द्रजी जैन द्वारा संकलित)

50 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

छहढाला (रंगीन सचित्र, अंग्रेजी)

25 प्रतिशत छूट के साथ मँगायें

स्वतन्त्रता की घोषणा

स्वाधीनता का शंखनाद

भक्तामर रहस्य

पंचास्तिकाय संग्रह

छहढाला (रंगीन सचित्र, हिन्दी)

पंच कल्याणक प्रवचन

आध्यात्मिक पाठ संग्रह

वैराग्य उपावन माही...

दशधर्म प्रवचन

वह घड़ी कब आयेगी ?

साहित्य मँगाने का पता -

तीर्थधाम मङ्गलायतन

अलीगढ़-आगरा रोड, सासनी-204216 (हाथरस)(उ.प्र.)

मोबा : 9997996346, 9756633800

प्रकाशन तिथि - 14 फरवरी 2020 पोस्ट प्रेषण तिथि - 16-18 फरवरी 2020
Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2018-20

भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर

अहो! भावलिङ्गी मुनि अर्थात् चलते-फिरते परमेश्वर! जो भीतर आनन्द के झूले में झूलते हों और पञ्च महाव्रत का राग उठे, उसे विष मानते हों, अहा! जिनके दर्शन बड़े भाग्य से प्राप्त होते हों, जो आनन्द की खेती कर रहे हों **... वह धन्य दशा अलौकिक है। गणधरों का नमस्कार जिसे पहुँचता हो, उस दशा की क्या बात!**

(पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी)

पं. सं. : DELBIL/2001/4685
स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक पवन जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। सम्पादक : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन
श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)
Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust
Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)
Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22
info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com